शीर्षक – भारतीय संगीत में वाद्यवृन्द की परम्परा

डा0 किरन शर्मा
असि0 प्रोफेसर (संगीत)
आर0जी0पी0जी0 कॉलेज,
मेरठ।

भारतीय परम्परा में संगीत को 'कला' शब्द के पयार्य के रूप प्रयुक्त किया गया है। भारतीय संगीत का विकास अनेकानेक युगों की समकालीन प्रवृत्तियों के अनुसार हुआ है। समयानुसार परिवर्तन सृष्टि की वास्तविकता है। सृष्टि के आदि काल से ही संगीत मानव मन के भावों की अनुभूति एवं अभिव्यक्ति का साधन रहा है। भारतीय संगीत में गीत वाद्य एवं नृत्य तीनों के सामूहिक रूप को ही संगीत कहा गया है।

''गीतं, वाद्यं, नृत्यं यत्र संगीत मुच्यते

(सं0 रत्नाकर)

प्राचीनकाल में गायन, वादन, तथा नृत्य अधिकतर सामूहिक रूप में होता था। वैदिक काल में वृंदगान के कई उल्लेख मिलते हैं। उस समय गीतों को आधार देने के लिए वीणा मृदंग आदि वाद्यो की संगति की जाती थी। मन्दिरों की परम्परा में देव अराधना के समय शंख, घंटा, घड़ियाल, मृदंग झाँझ, ढ़ोल, मंजीरे, करताल, आदि अनेक वाद्यो के वादन का उल्लेख मिलता है। तत्, धन, अवनद्य एवं सुषिर, वाद्यो के सभी प्रकार भारतीय मन्दिरों में उपलब्ध रहे हैं। वाद्यवृन्द को परिभाषित करते हुए कहा जा सकता है कि–

वाद्यवृन्द अथवा ब्तबीमेजतं वाद्यो के सामूहिक वादन की वह क्रिया है जिसमें अनेक स्वर वाद्यो का समावेश होता है जैसे–सितार, वायलिन, स्वरमंडल, गिटार, मैडोलिन, क्लारियोनेट आदि। वाद्यवृन्द में श्रोताओं को रसानुभूति के चरमोत्कर्ष तक ले जाने में विभिन्न वाद्यो द्वारा उत्पन्न संयोजित सांगीतिक ध्वनियों का विशेष योगदान होता है। डा0 नारायण मेनन के अनुसार–

ष्तबीमेजतं वादकों का एक ऐसा वृन्द है जिसमें वादकों में परस्पर एक प्रकार का मान्य और समुचित संतुलन होता है। यह एक ऐसा समुदाय है जिसके अलग–अलग अंग समवेत् रूप में एक संयुक्त और संश्लिष्ट वाद्ययंत्र के समान हो सकते हैं।''

भारतीय संगीत में 'वाद्यवृंद' का विकास पाश्चात्य संगीत की अपेक्षा कम हुआ है। वाद्यवृन्द को पाश्चात्य संगीत में व्तबीमेजतं कहा गया। भारत में वाद्यवृंद का विकास पाश्चात्य संगीत जगत की अपेक्षा कम होने के कुछ कारण इस प्रकार थे (1) भारतीय संगीत में राग रचना के जटिल नियम थे। (2) गायन के स्थान पर वाद्यों का स्थान गौण था। (3) कल्पनाशील वाद्य आधारित कथानक, तथा प्रयोगशील वाद्य रचनाकारों का अभाव (4) वाद्यो को स्वतंत्र रूपसे प्रयुक्त न करने की उपेक्षित मनोवृत्ति, वृदवान शैली को एक अलग पहचान देने हेतु उचित प्रयत्नों का अभाव आदि।

भारतीय वृंदवादन शैली के विषय में प्रो0 पी0 साम्बमूर्ति लिखते हैं कि वृंदवादन प्राचीनकाल से ही प्रचार में था। शिव प्रदोष–स्तोत्र में उल्लेख है कि जब भगवान शंकर नृत्य करते थे तब सरस्वती जी वीणा बजाती थी, इंद्र वेणुबजाते थे। ब्रहमा विष्णु करताल बजाते थे, तथा लक्ष्मी जी गीत गाती थी। रामायण, महाभारत आदि पौराणिक ग्रंथों में भी वृंदगान का उल्लेख मिलता है, इसमें वाद्यो का प्रसंग के अनुसार उपयोग होता था। यज्ञ के अवसर पर सामगान के साथ दस प्रकार की वीणाओं का समूह वादन होता था।

पाणिनी के काल में वाद्य के लिए 'तूर्य' शब्द का प्रयोग किया जाता था। प्राचीन गुफाओं में प्रदर्शित शिल्प और भित्तिचित्र भी प्राचीनकाल में वृंदवादन के अस्तित्व पर प्रकाश डालते हैं। इन शिल्प एवं भित्तिचित्रों में सभाखंड वाद्यकारों के बैठने की व्यवस्था को दर्शाया गया है एक अन्य चित्र में वाद्य वादन करते हुए पुरूषों एवं नृत्य करते हुए स्त्रियों को दिखाया गया है। अमरावती के एक मंदिर के स्तंम्भ में भगवान बुद्ध की मूर्ति के साथ बीस वाद्यकारों का समूह है। इन साक्ष्यों के आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि प्राचीनकाल में वाद्य प्रबन्ध था जो वादन और वाद्यो के सामूहिक वादन के अर्थ में प्रयुक्त किया जाता था।

बुद्धकाल में भेरी, मृदंग, शंख, पणव, वीणा, तंत्री, झाँझ आदि वाद्यों का वादन होता था। विशेष अवसरों पर इन वाद्यवृन्दों का प्रयोग जनसाधारण में प्रचलित था इनका विशेष वर्णन जातक कथाओं, चित्रों एवं बौद्ध कलाकृतियों में मिलता है।

भारतीय वाद्यवृन्द के प्रमाणिक इतिहास भरतकाल से प्राप्त होता है। भरत ने अपने ग्रंथ 'नाट्यशास्त्र' में वाद्यवृन्द के लिए 'कुतुप' संज्ञा का प्रयोग किया है, अर्थात भारतकाल में वाद्यवृन्द को 'कुतुप' कहा जाता था।

नाट्य के अन्तर्गत उन्होंने तीन प्रकार के 'कुतुप' का उल्लेख किया है (1) तत् कुतुप (2) अवनद्य कुतुप (3) नाट्य कुतुप। तत् कुतुप में गायकों की संगति के लिए तंत्री तथा सुषिर वाद्यों का प्रयोग होता था। इसमें वीणा वादक का स्थान प्रमुख होता था। द्वितीय वर्ग में चर्म वाद्यों का प्रयोग होता था जिसमें वंशी वादकों को प्रमुख स्थान प्राप्त था। तृतीय प्रकार का 'नाट्य कुतुप' था।

किंतु इसका प्रयोग नाट्य के सन्दर्भ में होता था। नाट्यशास्त्र के अतिरिक्त अन्य किसी ग्रंथ में वाद्यवृन्द को उल्लेख प्राप्त नहीं होता है। यद्यपि बारहवीं शताब्दी के समय शारंगदेव ने अपने ग्रंथ संगीत रत्नाकर में वृन्दवादन की स्थिति का उल्लेख करते हुए स्पष्ट किया है कि उस समय वृंदवादन में पुष्कर वाद्यों एवं 'मृदंग' वाद्यों का बाहुल्य था। उन्होंने नाट्यकुतुप का वर्णन करते हुए लिखा है कि तीन प्रकार के कुतुप के सहवादन की क्रिया 'वृंद' कहलाती थी। इन प्रमाणों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि प्राचीनकाल में गायकों व वादकों के समूह हेतु 'वृंद' शब्द प्रचलन में था। 'वृंद' शब्द के तीन भेद थे उत्तम, मध्यम एवं कनिष्ठ। यह वर्गीकरण वादकों की संख्या के आधार पर होता था। मुगल काल तक आते आते वृन्दवादन के आस्तित्व का रूपांतर प्रारंभ हो गया था। सर्वप्रथम गीत के स्थायी का समूह वादन होता था इसके उपरांत वृंद के अन्य वादक अपना कौशल पृथक–पृथक रूप से दर्शाते हुए स्थायी एवं अंतरे का विस्तार करते थे। यद्यपि मुगलकाल में अनेक नवीन गायन शैलियां तथा वाद्यों का विकास हुआ किन्तु वृन्दवादन की परम्परा का ह्रास हुआ।

मुगलकाल में कुतुप की संज्ञा ''नौबत'' को प्रदान की गई। नौबत के अन्तर्गत दमामा, नक्कारा, ढोल, कर्ना, सुर्ना, नफीरी, सींग, साज, झाँझ इन नौ वाद्यो का वादन किया जाता था।

वृन्दवादन की शैली में परिवर्तन उन्नीसवीं शताब्दी में हुआ। रंगमंच के प्रादुर्भाव से नाटकों की परम्परा पुनः प्रारंभ हुई तथा उनके प्रचार–प्रसार हेतु वृन्दवादन की आवश्यकता हुई। जनता की अभिरूचि पर नाटक कम्पनियाँ निर्मित हुई। बंगाल में रवीन्द्र संगीत का जन्म हुआ। बंगाल में वृंदवादन शैली में नवीन प्रयोग हुए। नाट्य कम्पनियों के द्वारा वृन्दवादन को पोषित किया गया किंतु इसमें विदेशी वाद्यो हारमोनियम् क्लारियोनेट, ट्रम्पेट, वायलिन जैसे वाद्यो का प्रयोग भारतीय वाद्यों के साथ होने लगा। अनेक राजे रजवाड़ों ने भी इस क्षेत्र में अपना योगदान दिया उनमें नवाब

रामपुर तथा महराजा बड़ौदा के नाम उल्लेखनीय है। संगीतज्ञों में उस्ताद अलाउद्दीन खाँ का 'मैहर बैंड' वृंदवादन के क्षेत्र में अग्रणी था। खाँ साहब पश्चिमी वाद्यो के वादन में भी पारंगत थे। कलकत्ता वाद्यवृन्द में वे स्वयं क्लारियोनेट तथा वायलिन वादक का कार्य कर चुके थे। बाबा साहब के मैहर वादवृन्द की रचनाएं शास्त्रीय रागों तथा लोकधुनों दोनों पर आधारित होती थी। मैहर वाद्यवृन्द का प्रथम प्रदर्शन 1924 में लखनऊ में हुआ था। देश विदेश में इसके कई सफल कार्यक्रम हुए। पाश्चात्य एवं भारतीय संगीत की मेलोडिक छटा से युक्त मैहर वाद्यवृन्द बहुत लोकप्रिय हुआ। मौलाबख्श ने बड़ौदा के पुलिस बैंड के लिए वृंदवादन में भारतीय राग रागनियों का अभिनव प्रयोग किया। पं0 रविशंकर ने कथानक आधारित वाद्य रचनाओं का निर्माण किया। उन्होंने भारतीय रागों के प्रस्तुतिकरण में पाश्चात्य वाद्यो का प्रयोग कर अपूर्ण ख्याति प्राप्त की उनके भाई पं0 उदय शंकर ने अपनी नाट्य कम्पनी के माध्यम से लोकधुनों का उपयोग करके वृन्दवादन रचना में अनेक प्रयोग किए। अनेक चित्रपट संगीतज्ञों तथा संगीत कम्पनियों ने भी इस क्षेत्र में प्रयास किए। पं0 रविशंकर ने आकाशवाणी द्वारा स्थापित वादवृन्द का भी संचालन किया था। टी0के0जे0 अय्यर के साथ मिलकर किए गये इस व्तबीमेजतं में अनेक भारतीय एवं पाश्चात्य वाद्यो का समन्वय था।

पं0 रविशंकर के अनुसार "निश्चय ही यह स्वीकार करना पड़ेगा कि पाश्चात्य वाद्यवृन्द परम्परा अत्यंत उन्नत है। उसकी विशेषता हारमोनी (स्वर–संगति) है। किंतु हमारे शास्त्रीय संगीत की प्रकृति ऐसी है कि उसमें स्वंर संगति का स्थान अपेक्षा कृत कम है। ऐसी स्थिति में नये प्रयोग करते समय इस बात का विशेष ध्यान रखना होगा कि हम अपने संगीत की आत्मा से विलग न हो जायें।"

भारतीय संगीत में वृन्दवादन का स्थान–

भारतीय संगीत में पाश्चात्य संगीत की अपेक्षा वाद्यवृन्द का उतना विकास नहीं हो सका है संभवतः इसका कारण यह भी है कि भारतीय संगीत का आधार मेलोडी है और यहाँ राग संगीत की प्रधानता है। राग संगीत के अन्तर्गत कल्पना संचार के माध्यम से कलाकार अपनी रचना में अपनी भावभिव्यक्ति विभिन्न प्रकार से अभिव्यक्त करते हैं। भारतीय संगीत गुरूशिष्य परम्परा पर आधारित रहा है जो मौखिक शिक्षा पर निर्भर रही है यद्यपि पं0 वि0 नारायण भातरवंडे, तथा विष्णु दिगम्बर पलुस्कर जी के प्रयासों से स्वरलिपि पद्वति का अविष्कार हुआ किंतु यह पद्वतियां सगीत के पूर्ण

रूप से व्यक्त करने में खासकर वृन्दवादन के क्षेत्र में पूर्णतयः सक्षम नहीं हैं। इसके विपरीत पाश्चात्य स्वरलिपि पद्धति हारमोनी पर आधारित है और यह पद्वति समुचित सूक्ष्म एवं पूर्ण रूप से वृन्दवादन को अभिव्यक्त करने में सक्षम है। शायद हमारे यहां गुरूमुख परम्परा के कारण स्वरांकन पद्धति को इतना महत्व नहीं दिया गया। नाद के छोटे बड़ेपन, सूक्ष्म ताल विराम, विविध सांगीतिक अलंकरण मींड खटका कण, क्रन्तन, मुर्की इत्यादि की अभिव्यक्ति की भारतीय स्वरलिपि पद्धति में सुविधा नहीं है। पाश्चात्य स्वरलिपि पद्धति अधिक वैज्ञानिक होने के कारण यहां सिंफनी प्रकार की रचनाओं का वाद्यवृन्द के क्षेत्र में विकास हुआ। अतः आवश्यकता है कि भारतीय स्वरलिपि पद्धति का क्षेत्र और विस्तृत हो। इस हेतु सरकार की ओर से भी प्रयास किये जाने चाहिए। जिससे वाद्यवृन्द के शिक्षण की व्यवस्था हो सके। यद्यपि भारतीय सिने जगत में ब्तबीमेजतं को थोड़ा बहुत प्रयोग हुआ है। वृन्दवादन का प्रयोग नाटक नृत्य–नाटिकाओं आपेरा, गीत आदि में आवश्यक रहता है।

भारतीय संगीत में वृन्दवादन के क्षेत्र में संभावनाओं का क्षेत्र व्यापक हो सकता है समय–समय पर संगीतज्ञों ने इसके लिए प्रयास भी किए है। वृन्दवादन में भावों द्वारा उदभूत विभिन्न वाद्यों के अभिव्यक्तिकरण में नवीन प्रयोग हुए। संगीत के अनन्य उपासक पं0 लालमणि मिश्र का नाम भी भारतीय वृन्दवादन के क्षेत्र में अत्यंत आदर पूर्वक लिया जाता है। गीत–संगीत नृत्य नाटिका को अभिनीत कराने की उनमें अद्भुत क्षमता थी। स्व0 पण्डित लालमणि मिश्र ने कुशलता पूर्वक अनेक वाद्यवृन्द रचनाओं का संचालन एवं निर्देशन किया। उन्होंने रचनाओं में हारमोनी मेलोडी का सुन्दर समन्वय किया। उनकी रचनायें विविध रागों पर आधारित होती थी उन्होने 'सृष्टिचक्र' नामक एक सुन्दर वाद्यवृन्द की रचना की जिसमें समयाःनुसार प्रातःकाल से लेकर मध्यरात्रि तक के रागों का समन्वय किया था। उन्होंने कई सुन्दर वाद्यवृन्दों का निर्माण किया। विभिन्न प्रकार के वाद्यों के प्रयोग द्वारा नवीन वृन्दीकरण तथा वृन्दवादन के निर्माण करने की क्षमता उनकी उत्कृष्ट कला का परिचायक थी। इनके अतिरिक्त जुबिन मेहता ने भी अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर अनेक वाद्यवृन्द कार्यक्रमों का निर्देशन किया। महात्मा गाँधी की 125वीं जयंती पर उनके कार्यक्रम । ब्वदेमदज वित च्मंबम ने श्रोताओं को मंत्र मुग्ध कर दिया था। भारतीय वाद्यवृन्द के क्षेत्र में भी यदि पाश्चात्य संगीत की भाँति ''सिंफनी'' प्रकार की रचनायें निर्मित हो तो अधिक उपर्युक्त

होगा। वर्तमान समय में सिम्फनी आर्केस्ट्रा ऑफ इंडिया (व्) भारत का एकमात्र और पहला सिम्फनी आर्केस्ट्रा है। जो सन् 2006 में छब्ब। ;छंजपवदंस ब्मदजतम व िच्मतवितउपदह ।तजेद्ध के अन्तर्गत स्थापित हुआ।ैव् प्रतिवर्ष दो बार फरवरी एवं सितम्बर में कर्न्सट का आयोजन करता है। इन नवीन प्रयोगों को देखकर हम यह कह सकते हैं कि भारतीय वृन्दवादन के क्षेत्र में नवीन दिशाओं का सूत्रपात हुआ है। यह भी विचारणीय है कि हमारे संगीत की प्रकृति ऐसी है कि उसमें स्वर संगति का स्थान अपेक्षाकृत कम है। इस स्थिति में नये प्रयोग करते समय इस बात का ध्यान रखना आवश्यक है कि हमारे संगीत की मौलिकता बनी रहे।

<u>संदर्भ सूची</u>

संगीत मई 1985

संगीत अक्टूबर 1982

संगीत व्तबीमेजतं अंक

पाश्चात्य स्वरलिपि पद्धति एवं भारतीय संगीत

संगीत जुलाई 1980

संगीत मणि